बारह भावना : वंदूँ श्री अरहंतपद...

कविश्री मंगतराय

(दोहा)

वंदूँ श्री अरहंतपद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग-जीवन-हित जान।।१।।

(विष्णुपद छंद)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरतखंड सारा।
कहाँ गये वह राम-रू-लक्ष्मण, जिन रावण मारा।।
कहाँ कृष्ण-रुक्मिणि-सतभामा, अरु संपति-सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी।।२।।
नहीं रहे वह लोभी-कौरव, जूझ-मरे रन में।
गये राज-तज पांडव वन को, अगनि लगी तन में।।
मोह-नींद से उठ रे अचेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं गुरु, बारह-भावन को।।३।।

१. अनित्य भावना

सूरज-चाँद छिपै-निकलै, ऋतु फिर-फिर कर आवै।
प्यारी आयु ऐसी बीतै, पता नहीं पावै।।
पर्वत-पतित-नदी-सरिता-जल, बहकर नहिं डटता।
स्वांस चलत यों घटै, काठ ज्यों आरे-सौं हटता।।४।।
ओस-बूँद ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि-पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझै प्रानी।।
इंद्रजाल आकाश-नगर-सम, जग-संपत्ति सारी।
अथिररूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी।।।५।।

२. अशरण भावना

काल-सिंह ने मृग-चेतन को, घेरा भव-वन में।
नहीं बचावन-हारा कोई, यों समझो मन में॥
मंत्र-यंत्र-सेना-धन-संपत्ति, राज-पाट छूटै।
वश नहिं चलता काल-लुटेरा, काय-नगरि लूटै॥६॥
चक्ररत्न हलधर-सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया॥
छेव-धर्म-गुरु शरण जगत् में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, यों ही उमर खोई॥७॥

३. संसार भावना

जनम-मरण अरु जरा-रोग से, सदा दुःखी रहता।
द्रव्य-क्षेत्र-अरु-काल-भाव-भव, परिवर्तन सहता॥
छेदन-भेदन नरक-पशुगति, वध-बंधन सहना।
राग-उदय से दुःख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥८॥
भोगि पुण्यफल हो इकइंद्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुष-जन्म अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पंचमगति सुख मिलै, शुभाशुभ को मेटो लेखा॥९॥

४. एकत्व भावना

जन्मै-मरै अकेला चेतन, सुख-दुःख का भोगी।
और किसी का क्या इक दिन यह, देह जुदी होगी॥
कमला चलत न पैंड-जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने-अपने सुख को रोवैं, पिता-पुत्र-दारा॥१०॥

ज्यों मेले मे पंथीजन मिल, नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैनबसेरा, पंछी आ करते।
कोस कोई दो कोस कोई उड़, फिर थक-थक हारै।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै।।11।।

5. अन्यत्व भावना

मोह-रूप मृग-तृष्णा जग में, मिथ्या-जल चमके।
मृग-चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दौड़ै थक-थक के।
जल नहिं पावे प्राण गमावे, भटक-भटक मरता।
वस्तु-पराई माने अपनी, भेद नहीं करता।।12।।
तू चेतन अरु देह-अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिले-अनादि यतनतैं बिछुड़े, ज्यों पय अरू पानी।।
रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेदज्ञान करना।
जौलों पौरूष थके न तौलों, उद्यमसों चरना।।13।।

6. अशुचि भावना

तू नित-पोखै यह सूखे ज्यों, धोवै त्यों मैली।
निश-दिन करै उपाय देह का, रोग-दशा फैली।।
मात-पिता-रज-वीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
मांस-हाड़-नस-लहू-राध की, प्रगट-व्याधि घेरी।।14।।
काना-पौंडा पड़ा हाथ यह, चूसै तो रोवै।
फलै अनंत जु धर्मध्यान की, भूमि-विषै बोवै।।
केसर-चंदन-पुष्प सुगन्धित-वस्तु देख सारी।
देह-परसतैं होय अपावन, निशदिन मल-जारी।।15।।

7. आस्रव भावना

ज्यों सर-जल आवत मोरी, त्यों आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव-प्रदेश गहे जब पुदगल-भरमन को॥
भावित आस्रवभाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण-बंधन को॥16॥
पन-मिथ्यात योग-पंद्रह, द्वादश-अविरत जानो।
पंच 'रु बीस कषाय मिले सब, सत्तावन मानो।
मोह-भाव की ममता टारै, पर-परणति खोते।
करै मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानीजन होते॥17॥

8. संवर भावना

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर, क्यों नहिं मन लाता॥
पंच-महाव्रत-समिति गुप्ति कर, वचन-काय-मनको।
दशविध-धर्म परीषह-बाईस, बारह-भावन को॥18॥
यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन-दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥
भाव शुभाशुभ-रहित शुद्ध-भावन-संवर पावै।
डाट लगत यह नाव पड़ी, मँझधार पार जावै॥19॥

9. निर्जरा भावना

ज्यों सरवर-जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी।
संवर रोके कर्म निर्जरा, ह्वै सोखनहारी॥
उदयभोग सविपाक-समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावे, पालविषैं माली॥20॥

पहली सबके होय, नहीं कुछ सरे काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटे जगत्-फेरा।।
संवर-सहित करो तप प्रानी, मिले मुकति-रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जाने सब ज्ञानी।।21।।

10. लोक भावना

लोक-अलोक-अकाश-माँहि, थिर-निराधार जानो।
पुरुष-रूप कर-कटी भये, षट्-द्रव्यनसौं मानों।।
इसका कोई न करता-हरता, अमिट-अनादी है।
जीव 'रु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म-उपाधी है।।22।।
पाप-पुण्यसौं जीव जगत् में, नित सुख-दुःख भरता।
अपनी करनी आप भरे, सिर औरन के धरता।।
मोह-कर्म को नाश मेटकर, सब जग की आशा।
निज-पद में थिर होय लोक के, शीश करो बासा।।23।।

11. बोधि-दुर्लभ भावना

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रसगति पानी।
नर-काया को सुरपति तरसे, सो दुर्लभ प्रानी।।
उत्तम-देश सुसंगति दुर्लभ, श्रावक-कुल पाना।
दुर्लभ-सम्यक् दुर्लभ-संयम, पंचम-गुणठाना।।24।।
दुर्लभ रत्नत्रय-आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत-पालन, शुद्धभाव करना।।
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधिज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं फिर, इस भव में आवै।।25।।

12. धर्म भावना,

धर्म 'अहिंसा परमो धर्मः', ही सच्चा जानो।
जो पर को दुःख दे सुख माने, उसे पतित मानो।

राग-द्वेष-मद-मोह घटा, आतम-रुचि प्रकटावे।
धर्म-पोत पर चढ़ प्राणी भव-सिन्धु पार जावे।।26।।
वीतराग-सर्वज्ञ दोष-बिन, श्रीजिन की वानी।
सप्त-तत्त्व का वर्णन जामें, सबको सुखदानी।।
इनका चिंतवन बार-बार कर, श्रद्धा उद-धरना।।
'मंगत' इसी जतनतैं इकदिन, भव-सागर-तरना।।27।।

***

बारह भावना

(दोहे : राजा राणा छत्रपति...)

कविश्री भूधरदास

(अनित्य भावना)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।1।।

(अशरण भावना)

दल-बल देवी-देवता, मात-पिता-परिवार।
मरती-बिरिया जीव को, कोई न राखनहार।।2।।

(संसार भावना)

दाम-बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।3।।

(एकत्व भावना)

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कबहूँ इस जीव को, साथी-सगा न कोय।।4।।